इकाई २१ उदारीकरण और संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम

इकाई की रूपरेखा

२१.० उद्देश्य

२१.१ प्रस्तावना

२१.२ उदारीकरण

२१.२.१ उदारीकरण क्या है?

२१.२.२ उदारीकरण की प्रेरणा

२१.३ संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम (सैप)

२१.४ दक्षिण एशिया के आर्थिक अभिलक्षण

२१.५ बांग्लादेश में उदारीकरण और 'सैप'

२१.६ भारत में उदारीकरण और 'सैप'

२१.७ पाकिस्तान में उदारीकरण और 'सैप'

२१.८ श्रीलंका में उदारीकरण और 'सैप'

२१.९ सारांश

२१.१० कुछ उपयोगी पुस्तकें

२१.११ बोध प्रश्नों के उत्तर

२१.० उद्देश्य

यह इकाई दक्षिण एशिया में आर्थिक विकास से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण विषय का विश्लेषण प्रस्तुत करती है, यथा उदारीकरण एवं संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम (सैप)। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि:

- उदारीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कर सकें;
- संरचनात्मक समंजन कार्यक्रमों (Structural Adjustment Programmes) के मुख्य अवयवों को पहचान सकें;
- दक्षिण एशिया में उदारीकरण एवं 'सैप' (SAPs) में शामिल विषयों को पहचान सकें;
- दक्षिण एशियाई अर्थव्यवस्थाओं पर उदारीकरण एवं 'सैप' के प्रभाव का मूल्यांकन कर सकें; और
- उदारीकरण एवं 'सैप' के गुणों एवं दोषों का विश्लेषण कर सकें।

२१.१ प्रस्तावना

ब्रैटनवुड्स व्यवस्था नामक अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, जिसने निश्चित रूप द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल बाद के वर्षों में लिया, ने १९७३ के उत्तरार्ध तक भलीभाँति काम किया। विकास दर में सर्वत्रा उछाल रहा। तथापि, सत्तर के दशकांत में विश्व को पहला 'तेल आघात' लगा जब तेल व पैट्रोलियम

उत्पादों के दाम तेजी से बढ़ गए। विश्व अर्थव्यवस्था मंदी में डूब गयी। हालाँकि पश्चिम व यूरोप की विकसित अर्थव्यवस्थाएँ, अल्प-विकसित व विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ सबसे बुरी तरह प्रभावित हुईं उनके भुगतान-शेष (balance of payments) को गंभीर घाटे के रूप में देखा गया। इनमें से कुछ देश ऋण-जाल में फँस गए। जब ये देश राहत सहायता के लिए अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के पास पहुँचे तो कोष ने ऋण स्वीकृत करते समय इन ऋणी देशों को संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम लागू करने को कहा, जोकि बाज़ार की भूमिका को बढ़ाने तथा राज्य/ सरकार की भूमिका को घटाने वाले थे। वर्तमान में यह योजना दक्षिण एशिया समेत अनेक देशों में लागू की जा रही है। इस इकाई में हम दक्षिण एशिया में उदारीकरण व संरचनात्मक समंजन कार्यक्रमों का विश्लेषण करेंगे और उनके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

२१.२ उदारीकरण

१९२० के दशकोत्तर के 'महाअवसाद' (Great Depression) ने विश्व अर्थव्यवस्था के सामने अल्पकालीन के साथ-साथ दीर्घकालीन समस्याएँ भी रखीं। ये समस्याएँ आगे चलकर बढ़ गयीं जिसके परिणामस्वरूप द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ। ये समस्याएँ अनेक प्रकार की थीं: संरचनात्मक, व्यापार पद्धतियाँ, भुगतान-शेषों में घाटा, घरेलू निवेश को जन्म देने में निरन्तर कमी, बेरोज़गारी आदि। विश्व अर्थव्यवस्था को इन समस्याओं से निकालने और स्थायी समाधान खोजने के लिए विभिन्न मॉडल तैयार किए गए। एक मॉडल, जो लब्धप्रतिष्ठ अर्थशास्त्री जे. एम. केन्स द्वारा सुझाया, तीन अन्तरराष्ट्रीय संगठन स्थापित किए जाने के संबंध में था, यथा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ), विश्व बैंक (World Bank), और अन्तरराष्ट्रीय व्यापार संगठन (आई.टी.ओ)। उन्हें सौंपे गए दायित्व भिन्न-भिन्न थे। आई.एम.एफ. का काम था भुगतान-शेषों (बी.पी.ओ.) की आवश्यकताओं हेतु अल्पाधिक वित्त प्रदान करना, यानी बी.पी.ओ. में बढ़ते घाटे को ठीक करना। विश्व बैंक का काम था द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुए नुकसान की भरपाई और आर्थिक विकास के लिए तदोपरांत अवधि में दीर्घावधि पूँजी प्रदान करना। आई.टी.ओ. का काम था अन्तरराष्ट्रीय व्यापार को नियंत्रित करने और मुक्त व्यापार में सहायता देने के लिए नियम स्थापित करना। आई.एम.एफ. और विश्व बैंक की स्थापना १९४० के आरंभ में की गई। १९४८ में आई.टी.ओ. की स्थापना के लिए सिफ़ारिश में किंचित परिवर्तन किया गया और एक नए नाम वाली संस्था स्थापित की गई – शुल्क एवं व्यापार पर आम सहमति यानी 'गैट' (General Agreement on Traiff and Trade - GATT)। जनवरी १९९५ में 'गैट' का पुनर्नामकरण विश्व व्यापार संगठन यानी डब्ल्यु.टी.ओ. (World Trade Organization) के रूप में हुआ और इसका कार्यक्षेत्रा व्यापार से जुड़े विषयों को समायोजित करने के लिए विस्तीर्ण किया गया, जैसे कि विदेशी निवेश एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय प्रवाह, आदि। ये तीनों संगठन विश्व अर्थव्यवस्था में प्रमुख खिलाड़ी बन गए हैं, जो विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करते हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व अर्थव्यवस्था उग्र प्रभाव वाले परिवर्तन से गुज़री – अमेरिका, कनाडा, यूनाइटेड किंग्डम, नीदरलैण्ड्स, जर्मनी जैसे विकसित औद्योगिक देशों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं को खोल दिया और बड़े पैमाने पर उदारीकरण कार्यक्रम अपना लिए। उदारीकरण ने १९५० से १९७३ के बीच इन देशों को तेजी से विकसित होने में मदद की। इस अवधि के दौरान उनकी विकास दर लगभग पाँच प्रतिशत रही जो कि गत १०० वर्षों की प्रवण विकास दर से लगभग दुगुनी थी। १९५०-७३ की अवधि को इसी कारण विश्व अर्थव्यवस्था के 'सुनहरे युग' के रूप में जाना गया। औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के विकास ने विश्व को लाभ पहुँचाया और अंतरराष्ट्रीय माल व्यापार में वृद्धि इस विकास की प्रेरक शक्ति थी।

२१.२.१ उदारीकरण क्या है?

पिछले दो दशकों में, उदारीकरण (Liberalisation) और भूमण्डलीकरण (Globalization) ही ऐसे शब्द हैं जो विकास अर्थशास्त्रा की बातचीत पर हावी हो गए हैं। सरल शब्दों में, उदारीकरण का

अर्थ है देशों के बीच व्यापार, निवेश व पूँजी प्रवाहों को मुक्त कर देना। इसका निहितार्थ है व्यापार-प्रक्रियाओं का सरलीकरण, यथा माल व्यापार, विदेशी निवेश, सेवाओं का आदान-प्रदान आदि, ताकि ये देश बिना कठिनाई व्यापार कर सकें। यह अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में मदद के लिए सरकार की कम हस्तक्षेपवादी और अधिक सहयोगी भूमिका पर ज़ोर देता है। व्यापार उदारीकरण का मर्म है आयात शुल्क (यथा, सीमाशुल्क) व ग़ैर-शुल्क रोधों को कम करना। निवेश का उदारीकरण इस तथ्य को रेखांकित करता है कि निजी घरेलू व विदेशी निवेशक सरकार द्वारा नियत प्रक्रियाओं के अनुसार उत्पादन कार्यों में अथवा विनिर्माण सेवा-क्षेत्रा की कम्पनियों के प्रबंधन में भाग दे सकते हैं। पूँजी-प्रवाहों के उदारीकरण का अर्थ है कि निवेशक (घरेलू व विदेशी) किसी भी समय-बिंदु पर अल्पावधि चालू के साथ-साथ दीर्घावधि पूँजी लाभ पर अपने निवेश को चला अथवा वापिस ले सकता है।

भूमण्डलीकरण अपेक्षाकृत एक व्यापक शब्द है जिसके दायरे में दृश्यघटनाओं की एक विस्तृत श्रेणी आती है। यह बहुराष्ट्रीय निगमों (एम.एन.सी.) के तत्त्वावधान अथवा स्वामित्व में विभिन्न देशों में उत्पादन सुविधाओं के एकीकरण के साथ-साथ उदारीकरण द्वारा मुहैया उत्पाद व वित्तीय बाज़ारों के एकीकरण की ओर भी इशारा करता है। सरल शब्दों में, भूमण्डलीकरण का अर्थ है राष्ट्र-राज्यों की राजनीतिक सीमाओं के परे आर्थिक गतिविधियों का विस्तार। यह विभिन्न देशों के बीच आर्थिक खुलेपन को बढ़ाने तथा आर्थिक अन्योन्याश्रय पर ज़ोर देता है।

एक और शब्द जिसको हाल के वर्षों में लोकप्रियता मिली है, वो है निजीकरण (Privatization)। यह सरकारी स्वामित्व वाले उद्यमों में राज्यीय परिसम्पत्तियों (यथा, राज्य-कोषीय धन/शेयरों) के विनिवेश की ओर संकेत करता है। ऐसा करके सार्वजनिक उद्यम का स्वामित्व निजी उद्यमी के पास चला जाता है। निजीकरण के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्रा के उद्यमों (पी.एस.यू.) के प्रबंधन में निजी भागीदारी की अनुमति होती है।

२१.२.२ उदारीकरण की प्रेरणा

उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण संबंधी आर्थिक प्रक्रियाएँ १९४५ से ही व्याप्त थीं। शुरू-शुरू में इन प्रक्रियाओं का कार्यान्वयन विकसित पश्चिम (उत्तरी अमेरिका एवं यूरोप के औद्योगिक देशों) तक ही सीमित था। इसके अतिरिक्त, ये प्रक्रियाएँ एक ही प्रयास में नहीं बल्कि विभिन्न चरणों में चलाई गईं। प्रथमत: व्यापार उदारीकरण एवं पूँजी संचलन की आज़ादी को अधिकतम सीमा तक लागू किया गया। विनिर्मित उत्पादों में व्यापार को 'गैट' के तहत अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौतों के क्रमिक चरणों से होते हुए द्वितीय विश्वयुद्ध-के बाद के पूरे काल में धीरे-धीरे उदारीकृत किया गया।

विकसित पश्चिम में पूँजी संचलन का उदारीकरण भी विभिन्न चरणों में हुआ, परन्तु विदेश-व्यापार के विनियमन की अपेक्षा कुछ विभिन्न तरीकों से। कई लिहाज से इन देशों के बीच पूँजी-बाज़ार उदारीकरण व्यापार उदारीकरण की अपेक्षा आगे निकल गया है। इनमें से अधिकाँश देशों ने चालू-खाता विनिमेय १९५० के दशकोत्तर में हासिल किया। पूँजी-खाता विनिमेय १९७० के दशक में ही घटित हुआ। प्रारम्भत: अमेरिका, कनाडा व जर्मनी में, १९८० में जापान में, तथा १९९० में फ्रांस एवं इटली में।

विभिन्न देशों के बीच श्रम-प्रवाहों के लिहाज से उदारीकरण काफ़ी कम हुआ है। इसके अतिरिक्त, व्यापार और पूँजी संचलनों से भिन्न, अनेक औद्योगिक देशों में समय के साथ इस क्षेत्रा में अधोपतन हुआ। तथापि, १९८० के बाद, औद्योगिक देशों में श्रम-मानदण्डों, न्यूनतम वेतनों व श्रमिक अधिकारों को कायम रखने में घरेलू क़ायदे-कानूनों में रही छूट ग़ौरतलब है। ये परिवर्तन बड़े पैमाने पर श्रमिक एवं उनकी सेवाओं के प्रवाहों में परिणत हुए हैं, विशेष रूप से सूचना प्रौद्योगिकी (आई.टी.) क्षेत्रा से विकसित देशों की ओर।

विकासशील देशों में भूमण्डलीकरण और उदारीकरण अपेक्षाकृत मंथर गति से हुआ। ये देश, जो अभी-अभी औपनिवेशिक शासन से उबरे थे, रूढ़िवादी विकास कार्यक्रम के रास्ते को छोड़कर नए

विकास प्रतिमान अपनाने को तैयार नहीं थे, इस भय से कि यह उनकी संप्रभुता को चुनौती दे सकता है। इसके मूल में सिद्धांत यह था कि यदि उदारीकरण व भूमण्डलीकरण को स्वीकार कर लिया जाता है तो विकसित देश अपेक्षाकृत अधिक लाभ कमायेंगे और विकासशील देशों को यह झेलना ही होगा। १९७३ के उत्तरार्ध में 'तेल आघात' और उसके बाद 'सुनहरे युग' (१९५०-७३) की समाप्ति पर ही बदलाव आना शुरू हुआ। १९७३ में पैट्रोलियम निर्यातक देशों के संगठन (ओपेक) ने तेल एवं पैट्रोलियम उत्पादों के दाम अचानक बढ़ा दिए और विकासशील देश ही सबसे बुरी तरह प्रभावित अर्थव्यवस्थाएँ रहीं। उनके तेल व पैट्रोलियम उत्पादों के आयात का बिल तेजी से अभूतपूर्व ऊँचाई पर जा पहुँचा जिसने उनकी भुगतान-शेष स्थिति पर विपरीत प्रभाव डाला। ये देश एक दयनीय स्थिति में पहुँच गए – निर्यात अर्जन में मंदी और आयात बिल में बढ़ोत्तरी। इसने विदेशी-मुद्रा आरक्षित भंडार संकट की ओर प्रवृत्त किया, जो कि निम्नतम-बिन्दु स्तर तक गिर गया जिससे बाह्य ऋण भुगतान में गंभीर चिंताओं ने जन्म लिया। अनेक विकासशील व अल्प विकसित देश (एल. डी.सी.) ऋण-जाल में फँस गए। इस स्थिति से उबरने के लिए, ये देश वित्तीय सहायता हेतु आई. एम.एफ के पास पहुँचे। मदद मिली परन्तु अर्थव्यवस्था-व्यापी नीति सुधारों की शर्तों के साथ, खासकर व्यापार व वित्तीय क्षेत्रों में। इसने उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण प्रक्रियाओं के कार्यान्वयन की ओर प्रवृत्त किया।

२१.३ संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम (सैप)

जिस भुगतान-शेष संकट ने विकासशील एवं अल्पतम विकसित देशों को जकड़ रखा था, उस से उबरने के लिए इन देशों ने बाहर से भारी कर्ज़ लिया। इसने उनकी अर्थव्यवस्थाओं के ताने-बाने को भंग कर दिया क्योंकि उपलब्ध वित्तीय संसाधन ऋण-भुगतान दायित्व पूरा करने की दिशा में लगा दिए गए। वे वित्तीय मदद के लिए आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के पास जाने को मज़बूर हो गए। इन संस्थाओं ने ऋण देते समय शर्त रखी कि ऋणी देश आई.एम.एफ. एवं विश्व बैंक द्वारा तैयार कार्यक्रमों के अनुसार ही अपनी अर्थव्यवस्थाएँ समायोजित करें। ये समायोजन कार्यक्रम ही संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम (सैप) कहलाते हैं। इसने इन कारणों से संरचनात्मक उपायों पर अपेक्षाकृत अधिक ज़ोर दिया – घरेलू संसाधन की तुरंत सुलभता को प्रोत्साहन मिले, मूल्यों की खींचतान बंद हो, आयातों की उन्नत वृद्धि सुनिश्चित हो (बाज़ारों को विदेशी उत्पादों के लिए खोलना), और निवेश प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण हो।

'तेल आघात' का प्रभाव विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों पर अधिक रहा, खासकर इसलिए कि विकासशील देशों ने 'प्रतिस्थापन' मॉडल अपनाया जिसने निर्यात बढ़ने के आसार पर पानी फेर दिया। ये देश ऐसी स्थिति में फँसे थे जहाँ निर्यातों में कोई वृद्धि नहीं अर्थात् मंदी थी और औद्योगिक एवं सेवाकार्यों के विस्तार के कारण आयात बढ़ रहा था। निर्यातों को विकास साधन के रूप कभी भी नहीं देखा जाता था। 'सैप' के तहत, इन देशों को अपनी विकास रणनीति को आयात प्रतिस्थापन की बजाय 'निर्यात प्रोत्साहन' अभिमुखी बनाने को कहा गया। इस रणनीति का मुख्य उद्देश्य था भुगतान-शेष पर स्थिरता फिर से कायम करना और विकासशील देशों को अपने बाहरी ऋणों को चुकाने में समर्थ करना। विकासशील देशों के सामने निर्यातों के माध्यम से ज़्यादा विदेशी मुद्रा कमाना एक विकल्प था, बेशक वे कितने भी ग़रीब हों।

इस रणनीति के पीछे एक सोच छिपी थी कि विकासशील देशों को माल व्यापार और विनिमेय ज़रूर करना चाहिए तथा अपने 'व्यापार-योग्य' क्षेत्रा को विकसित करना चाहिए। प्रछन्न रूप से अनिच्छुक भागीदारों को विश्व बाज़ार में लग जाने हेतु दबाव डालने वाली यह क्रियाविधि ही 'संरचनात्मक समंजन' नामक आर्थिक नीतियों की शृंखला है और इसका अत्यावश्यक अंग था निर्यातोन्मुखी विकास सिद्धांत। 'सैप' का उद्देश्य है अर्थव्यवस्था में निर्यातों की भूमिका बढ़ाना तथा वेतन एवं मूल्य स्थिरीकरण नीतियों एवं कठोरता कार्यक्रमों के संयोग से निजी क्षेत्रा को कार्य हेतु प्रवृत्त करना। 'सैप' पैकेज में निम्नलिखित उपायों का एक मिश्रण शामिल है:

१) राज्य एवं अर्ध सरकारी उद्यमों का निजीकरण ताकि अक्षमताएँ व सरकारी संरक्षण अथवा एकाधिकार कम हों,

२) उच्च ब्याज दर व ऋण दबाव ताकि स्फ़ीतिकारी प्रवृत्तियाँ कम हों,

३) व्यापार उदारीकरण ताकि स्वदेशी बाज़ार खुले और स्थानीय उद्योग विश्व बाज़ार प्रतिस्पर्धा में सामने आये तथा विदेश-व्यापार मुद्रा बढ़े,

४) घरेलू माँग प्रबंधनजो सरकारी बजटोंको कम करने तथा खर्चों को कम करने की ओर प्रवृत्तकरे,

५) मुद्रा ह्रास ताकि आयात मूल्यों को बढ़ाकर व निर्यातों को अधिक स्पर्धेय बनाकर भुगतान-शेष का उचित उपयोग किया जा सके,

६) मुक्त-बाज़ार मूल्य ताकि मूल्यपूर्तित खाद्य व उर्वरकों तथा विलासिता वस्तुओं पर आयात शुल्कों से होने वाली खींचातानी बंद हो।

इस एकमुश्त प्रस्ताव के साथ इन घोषणाओं को करने की सिफ़ारिश की गई: श्रम-बाज़ार की कार्यप्रणाली में संस्थागत सुधार एवं सामाजिक सुरक्षा प्रणाली में परिवर्तन तथा समाज-सेवाओं का निजीकरण। 'सैप' ने आय-वितरण लक्ष्यों की बजाय विकास लक्ष्यों पर ज़्यादा ज़ोर दिया। 'सैप' का भरपूर प्रयास था कि समग्र घरेलू व्यय एवं उत्पादन प्रतिमानों को फिर से एक लाइन में लाया जाए ताकि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाएँ स्थिर और संतुलित विकास के रास्ते पर लायी जा सकें। 'सैप' 'आघात चिकित्सा' पर आधारित थे जिनको आयात प्रतिस्थापन नीति, आर्थिक हस्तक्षेप एवं संरक्षणवाद का स्थान लेना था जो इन बुराइयों के लिए जिम्मेदार समझे जाते थे, जैसे ऊँची मुद्रास्फीति दरें, बेरोज़गारी तथा भुगतान-शेष एवं व्यापार घाटे, अक्षम चल रहे उत्पादन तंत्रा, आदि। 'सैप' ने इस काम पर ज़ोर दिया कि राज्य हस्तक्षेपवाद इन बातों के लिए प्रतिबद्ध रहे – सार्वजनिक सेवाओं का संगठन (रक्षा, न्याय, आदि), कानून एवं व्यवस्था वाले शासन की स्थापना, तथा उन कार्यकलापों का भार वहन करना जिन्हें निजी क्षेत्रा करने में अनिच्छुक हों।

१९८० के पूर्वार्ध तक, लगभग ३० अफ्रीकी देशों ने विश्व बैंक एवं आई.एम.एफ. की स्वीकृति और समर्थन से 'सैप' को अपना लिया। लैटिन अमेरिका पूर्व एवं दक्षिणपूर्व एशिया में 'सैप' १९७० के मध्य में शुरू किए गए। पूर्व एशिया में जापान, दक्षिण कोरिया एवं ताइवान ने आर्थिक गतिविधियों में सरकार की प्रति-क्रियाशील भूमिका वाले 'सैप' लागू किए। वृहद-आर्थिक स्थिरता एवं मानव पूँजी में निवेश पर ज़ोर देते हुए, 'सैप' उनकी दीर्घावधि विकास रणनीति में शामिल किए गए। इन देशों ने बाज़ार को व्यापक रूप से खोले जाने हेतु रणनीतिक एकीकरण को प्राथमिकता दी। चीन ने अर्थव्यवस्था १९७८ में खोल दी, परन्तु उसने विश्व बैंक के विकासात्मक प्रतिमान विषयक विचार को स्वीकार नहीं किया। उसने उदारीकरण और निजीकरण संबंधी अपनी ही योजना तैयार की। निस्संदेह, चीन में बाज़ारों का वृहद स्तर पर प्रवेश हुआ है, ये बाज़ार लचर अथवा स्पर्धेय होने से दूर हैं। इसके अतिरिक्त, श्रम, पूँजी एवं भूमि जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में ऐसे बाज़ार कोई अस्तित्व रखते मुश्किल से ही देखे जा सकते हैं।

दक्षिण पूर्व एशिया के उदाहरण में, १९८० के आरंभ से ही इस क्षेत्रा की अर्थव्यवस्थाओं ने अन्तर्मुखी नीतियों के स्थान पर बर्हिमुखी रणनीति अपनायी। तथापि, इन देशों ने भी विश्व बैंक एवं आई.एम.एफ. की नीति-बटियों पर भरोसा करने की बजाय अपने विकासात्मक प्रतिमान विकसित किए। परन्तु १९९७-मध्य से १९९९ के वित्तीय संकट ने इनमें से कुछ देशों (थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया एवं फ़िलीपीन्स) को वित्तीय मदद के लिए अचानक आई.एम.एफ. के पास जाने को मज़बूर कर दिया और आई.एम.एफ. 'सैप' लागू किए जाने की ज़िद करता रहा।

दक्षिण एशिया में 'सैप' विभिन्न अवधियों में शुरू किए गए – श्रीलंका में १९७७ में, भारत में १९९१-मध्य में। यहाँ 'सैप' आई.एम.एफ. एवं विश्व बैंक के विधानानुसार लागू किए गए और उनकी अपनी सरकारों की भावी आर्थिक रणनीति के लिए रूपरेखा बतौर लगभग स्वीकार ही कर लिए गए।

बोध प्रश्न १

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर इकाई-अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाएँ।

१) उदारीकरण एवं 'सैप' की अवधारणा के जन्म लेने से पहले विश्व अर्थव्यवस्था में विद्यमान परिस्थिति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

२) उदारीकरण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

३) 'सैप' के कौन-कौन से संघटक हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

२१.४ दक्षिण एशिया के आर्थिक अभिलक्षण

दक्षिण एशिया क्षेत्रा में चार अल्प विकसित देश (बंग्लादेश, भूटान, मालदीव एवं नेपाल) तथा तीन विकासशील देश (भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका) आते हैं। इस क्षेत्रा के किसी भी देश को विकसित अर्थव्यवस्था का दर्जा प्राप्त नहीं है। संपूर्ण क्षेत्रा अभावग्रस्त है जहाँ विश्व के एक-तिहाई ग़रीब रहते हैं। भारत ही इस क्षेत्रा में सबसे बड़ा देश है – जनसंख्या के लिहाज से, क्षेत्राफल के लिहाज से और अर्थव्यवस्था के लिहाज से। इस क्षेत्रा में बड़ी संख्या में ग्रामीण जनता है और उनमें से अधिकाँश कृषि पर ही आश्रित हैं।

कुल विश्व व्यापार में इस क्षेत्रा का माल व्यापार (निर्यात एवं आयात) बहुत थोड़ा है: १९९० के दशक में विश्व निर्यातों में इस क्षेत्रा के निर्यातों का संयुक्त अंश एक प्रतिशत से कम था। इसी प्रकार, इसी काल में विश्व प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के कुल अन्तर्वाहों में इसका संयुक्त अंश मुश्किल से दो

प्रतिशत था। दो अरब डॉलर से कुछ ही अधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) के साथ भारत इस क्षेत्रा में सबसे बड़ी एफ.डी.आई. का सूत्राधार है। चूँकि इसकी अर्थव्यवस्था का आकार बड़ा है, एफ.डी.आई. अंतर्वाह कम और उसकी क्षमता से नीचे है। पड़ोस के पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया एफ.डी.आई. के काफ़ी ऊँचे स्तरों के सूत्राधार हैं। उदाहरण के लिए, चीन हर साल लगभग ४० अरब अमेरिकी डॉलर एफ.डी.आई. आकर्षित करता है और सिंगापुर छह अरब अमेरिकी डॉलर।

वर्तमान में यह क्षेत्रा अनेक समस्याओं से गुज़र रहा है, खासकर एक लम्बे समय से चल रही ग़रीबी जो कि समग्र आर्थिक पिछड़ेपन का केन्द्र है। ग़रीबी से जुड़ी सामाजिक समस्याओं, जैसे आतंकवाद, नृजातीय संघर्ष आदि की भरमार है। गाढ़ी कमाई के आर्थिक संसाधन आतंकवाद के संकट से निबटने और नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने में लगा दिए जाते हैं। सामरिक व्यय बढ़ रहा है जबकि सामाजिक व्यय घट रहा है।

आगामी पाठांश में हम इस क्षेत्रा की चार बड़ी अर्थव्यवस्थाओं – बंग्लादेश, भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। इन अर्थव्यवस्थाओं के विषय में आँकड़े और आर्थिक जानकारी पर्याप्त रूप से उपलब्ध हैं। दूसरे, ये अर्थव्यवस्थाएँ काफ़ी समय से उदारीकरण एवं 'सैप' के काम में लगी हैं। उनका मूल्यांकन इन कार्यक्रमों के गुण-दोषों पर प्रकाश डाल सकता है। तीसरे, बाकी बचे तीन देश भूटान, मालदीव एवं नेपाल पराधीन अर्थव्यवस्थाएँ हैं। भारत उन्हें अनेक तरीकों से वित्तीय मदद देता है। भारत इन देशों को काफ़ी बाहरी सहायता मुहैया कराता है। उदाहरण के लिए, भारत ने शुरुआती वर्षों में समस्त विकास योजनाओं के लिए भूटान को वित्त उपलब्ध कराने मदद की। वर्तमान में, लगभग भूटान की एक-तिहाई पंचवर्षीय योजनाओं के लिए वित्त-प्रबंध भारत ने किया है।

२१.५ बांग्लादेश में उदारीकरण और 'सैप'

बांग्लादेश ने दिसम्बर १९७१ में अपनी आज़ादी से ही 'अन्तर्मुखी' (inward-looking) अथवा 'आयात प्रतिस्थापन' का रास्ता अपनाया। इस नीति का नतीजा यह हुआ कि देश निम्न विकास दर से ग्रस्त रहा और औद्योगिक एवं विनिर्माण क्षेत्रा ने नातिशय वृद्धि दर्ज की। औद्योगिक एवं व्यापार नीति का ज़ोर परम्परागत उद्योगों के विकास पर रहा, जैसे पटसन उत्पाद, वस्त्रोद्योग, बने-बनाये सूती वस्त्रा आदि। स्वतंत्राता के प्रथम दशक में, सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि का अंश लगभग ४० प्रतिशत था जो वर्ष २००० में लगभग २५ प्रतिशत तक गिर गया। विनिर्माण का अंश इस काल में स्थिर रहा जबकि जी.डी.पी. में सेवाकार्यों का अंश ५२ प्रतिशत तक बढ़ा। उद्योग का अंश १९८० में १६ प्रतिशत से बढ़ कर वर्ष २००० में २४ प्रतिशत तक हो गया है। सेवाकार्यों के अंश में वृद्धि को एक अल्पतम विकसित अर्थव्यवस्था हेतु वास्तविक प्रगति का कोई स्वरूप संकेत नहीं कहा जा सकता। बढ़ती जनसंख्या के कारण, ऐसे देशों में, जिसकी आवश्यकता है वो है रोज़गार अवसरों में संतुलित वृद्धि, जो कि सिर्फ़ विनिर्माण क्षेत्रा ही प्रदान कर सकता है। वस्तुत: गत २०-२५ वर्षों में, पश्चिम की विकसित अर्थव्यवस्थाओं की राष्ट्रीय आय में विनिर्माण क्षेत्रा का अंश ३० प्रतिशत से ऊपर रहा है। वास्तविक रूप में विनिर्माण क्षेत्रा की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति ने उनकी अर्थव्यवस्थाओं की बुनियादों को मज़बूत प्रदान की है।

नातिशय आर्थिक निष्पादन वाली पृष्ठभूमि के विरुद्ध बंगलादेश ने आर्थिक सुधार शुरू करने का निश्चय किया और १९९० में 'सैप' की नीति अपना ली। इसके बाद 'बहिर्मुखी' (outward-looking) नीति, अर्थात निर्यातोन्मुखी विकास नीति अपनायी गई। आर्थिक सुधारों का प्रभाव यह हुआ कि निर्यात तीन गुना से भी अधिक बढ़ गया: १९९१ में १.७२ अरब अमेरिकी डॉलर से बढ़ कर वर्ष २००० में ५.७६ अरब अमेरिकी डॉलर। आयात भी बढ़े पर उतनी तेजी से नहीं जितनी तेजी से निर्यात। जी.डी.पी. विकास दर में समग्रता से सुधार हुआ–१९९१ में ३.३ प्रतिशत से बढ़कर वर्ष २००० में ५.५ प्रतिशत तक। विदेश-व्यापार संबंधी प्रचलित व्यवस्था के उदारीकरण ने विकास दर को बढ़ाने में मदद की। उदारीकरण कार्यक्रम के तहत आयातों पर मात्राात्मक प्रतिबंध (quantitative

restrictions) कम किये गए। तथापि, निर्यात-टोकरी की विविधता मुख्य चुनौती है। वर्तमान में, बांग्लादेश के ७६ प्रतिशत निर्यात सूती पोशाकों एवं बुने वस्त्रा संबंधी हैं। वर्ष २००५ के पूर्वार्ध तक विश्व व्यापार संगठन के बहुरेशा समझौता (Multifibre Agrieement) के तहत सूती पोशाकों व पहनावों के निर्यातों के लिए संरक्षण समाप्त हो जायेगा और इससे बंग्लादेशी उत्पादों के निर्यात अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में नज़र आएँगे।

बांग्लादेश ने वर्ष १९९९ में एक नई उद्योग-नीति की घोषणा की जो विदेशी निवेश समेत, निजी क्षेत्रा की ज़्यादा भागीदारी वाले औद्योगिक आधार के विस्तार पर ज़ोर देती है। यह नीति आन्तरिक व बाह्य दोनों बाज़ारों में स्पर्धेयता बढ़ाने पर काफ़ी ज़ोर देती है, विनिर्माण आधार की विविधता, जिस प्रकार वस्त्रादि, रासायन, एवं खाद्य-प्रसंस्करण का पूरी तरह से आधिपत्य है, एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है। विविधता के लिहाज से उत्पादन के नए क्षेत्रा हैं – कम्प्यूटर सॉफ्टवेअर, कृषि संसाधन एवं खाद्य प्रसंस्करण। यद्यपि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी क्षेत्रा में आशाप्रद संभाव्यता है, देश गहरी विश्व-प्रतिस्पर्धा का सामना करने को तैयार नहीं है। अक्षम आधारभूत ढाँचा, अस्थिर बृहद्-आर्थिक परिवेश, अक्षम बाज़ार, खासकर पूँजी (ऋण व शेयर-मूल्य दोनों), सरकारी स्तर पर निर्णयन्-प्रक्रिया में अल्पतम पारदर्शिता, आदि एक पक्का औद्योगिक आधार बनाने में मुख्य बाधाएँ है। देश को तीव्र सुधारों की आवश्यकता है, खासकर वित्तीय क्षेत्रा में जो निरन्तर सतही और अल्पविकसित बना हुआ है। कुशल बैंकिंग प्रणाली का अभाव देश की विकास-प्रक्रिया में सबसे बड़ा रोड़ा है। इसके अलावा, पूँजी बाज़ार भी जायमान अवस्था में है। एक सुविकसित, दीर्घावधि बचत बाज़ार को अभी जन्म लेना है। एक सुविकसित पूँजी बाज़ार ही वित्तीय वैश्वीकरण का लाभ उठाने की पूर्व शर्त है और बंगलादेश इस क्षेत्रा में बहुत पीछे है।

उदारीकरण और 'सैप' की शुरुआत ने एफ.डी.आई. को आकर्षित करने में अर्थव्यवस्था की मदद की है। एफ.डी.आई. अन्तर्वाहों की राशि जो १९९१ तक लगभग नगण्य थी, वर्ष २००० में २८ करोड़ अमेरिकी डॉलर तक चली गयी। एफ.डी.आई. मुख्यत: ऊर्जा (तेल, गैस व पैट्रोलियम उत्पाद) अनुसंधान तथा पत्तन, सड़क, बिजली, दूरसंचार, आदि जैसे भौतिक आधारभूत ढाँचे के क्षेत्रा में आकर्षित किए जाते हैं। अब तक उदारीकरण व 'सैप' का प्रभाव बंग्लादेश की अर्थव्यवस्था पर इस अर्थ में सकारात्मक रहा है कि विकास दर की गति तेज हुई है और प्रतिव्यक्ति आय बढ़ी है। तथापि, जन-कल्याण पर राष्ट्रीय आय का वितरण असंतोषजनक रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि पर सरकारी खर्चे सामाजिक क्षेत्रा को एक सक्षम क्षेत्रा में बदलने में नाकाफ़ी साबित हुए हैं, जो कि दीर्घकालीन सतत विकास लाभ के लिए आवश्यक है, यद्यपि सैन्य खर्च जो प्रतीयमानत: सीमा के अन्दर ही दिखता है, उसे घटाकर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) के एक प्रतिशत से भी कम कर दिए जाने की आवश्यकता है। इससे अन्य विकासात्मक शीर्षों पर संसाधन-आबंटन बढ़ाने में मदद मिलेगी।

२१.६ भारत में उदारीकरण और 'सैप'

भारत ने जुलाई १९९१ में व्यापक आर्थिक सुधार शुरू किए ताकि वह उस आर्थिक संकट से उबर सके जो विदेशी मुद्रा (फॉरैक्स) भण्डार की कमी से अर्थव्यवस्था में पैदा हो गया था। फॉरैक्स भण्डार १९९० के आरम्भ से ही बुरी हालत में था, खासकर बढ़ते आयात बिल, निर्यातों में कमी और एफ.डी.आई. के अपर्याप्त अन्तर्वाहों के कारण। फॉरैक्स भण्डार पर गंभीर दबाव भारत के निर्यातों में आयातित कच्ची-सामग्री अवयव के उच्च स्तरों द्वारा डाला गया। विशेष रूप से तेल एवं पैट्रोलियम उत्पादों का आयात कुल आयात बिल के लगभग २० प्रतिशत के बराबर होता है। १९९०-९१ अमेरिका-इराक खाड़ी युद्ध ने अन्तरराष्ट्रीय तेलमूल्यों को तेज वृद्धि की ओर प्रवृत्त किया और भारत को सीधे प्रभावित किया क्योंकि फॉरैक्स भण्डार अगस्त १९९० में १.१ अरब अमेरिकी डॉलर से गिरकर जनवरी १९९१ में ८९.६ करोड़ अमेरिकी डॉलर पर पहुँचा। खाड़ी युद्ध ने भारत के इराक, कुवैत एवं अन्य पश्चिम एशियाई देशों को होने वाले निर्यातों को भी प्रभावित किया, जो

इराक पर संयुक्त राष्ट्र के पोताधिरोध (embalgo) और अरब सागर में तनाव की स्थिति के मद्देनज़र हुआ था। इसके अतिरिक्त, कुवैत में कार्यरत श्रमिकों को धन-प्रेषण आना बंद हो गया क्योंकि युद्ध को देखते हुए उन्हें वहाँ से हटाकर वापस भारत भेज दिया गया था। इन सब बातों का प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर कई प्रकार से हुआ और इसने औद्योगिक उत्पादन को छिन्न-भिन्न कर दिया। मुद्रास्फीति को अगस्त १९९१ में १६.७ प्रतिशत के शीर्ष स्तर पर पहुँचा दिया और वास्तविक जी. डी.पी. विकास दर तेज़ी से २.५ प्रतिशत तक गिर गई।

इस सारी आर्थिक अव्यवस्था के बीच राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति में अस्थिरता रही और सत्ता में एक प्रभारी केन्द्रीय सरकार। चुनावों की घोषणा हुई और नई सरकार ने जून १९९१ में कार्य-भार सँभाला। तत्काल् ही नई सरकार ने अर्थव्यवस्था के कायाकल्प हेतु शोधक उपायों की शृंखला शुरू कर दी। अल्पावधि उपाय संकट-प्रबंधन पर अभिलक्षित थे, जैसे निर्यात बढ़ाने के लिए भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन। दीर्घावधि उपाय संरचनात्मक सुधार संबंधी थे, जो क्षमता और उत्पादकता सुधारने के लिए थे। भुगतान-शेष में असंतुलन ठीक करने के लिए सरकार ने आई.एम.एफ. से विशाल ऋण लिए। भारतीय मुद्रा के अवमूल्यन ने ग़ैर-ज़रूरी आयातों को रोकने में मदद की। इन उपायों ने फॉरैक्स-भण्डार संकट (भुगतान-शेष पर) की समस्या से उबरने में मदद की क्योंकि निर्यातों में अब सुधार आने लगा था।

इन उपायों के साथ-साथ, सरकार ने आई.एम.एफ. एवं विश्व बैंक द्वारा प्रस्तुत मार्गनिर्देशों के अनुसार जुलाई १९९१ में वृहद्-स्तरीय आर्थिक सुधार शुरू किए। इन सुधारों की प्रक्रिया अब भी चल रही है। १९९० के दशक वाले 'प्रथम पीढ़ी सुधारों' का मुख्य प्रयास था अर्थव्यवस्था को विदेशी उत्पादकों एवं निवेशकों के लिए खोलना। ये सुधार निम्नलिखित चार क्षेत्राों में शुरू किए गए:

i) वित्तीय संशोधन (Fiscal Correction)

वित्तीय संशोधन के तहत मुख्य विषय था सरकारी खर्च को नियंत्राण में लाकर वृहद्-आर्थिक स्थिरता लाना। यहाँ उल्लेखनीय है कि १९९०-९१ में सरकार की वित्तीय स्थिति खराब थी, खासकर इसलिए कि व्यय आय से कहीं अधिक था तथा सरकार अक्सर बाहर से (अधिकतर आई.एम.एफ. से) भारी कर्ज़ ले लेती थी और यह ऋणाधिक्य ऋण-जाल की स्थिति में ले जाने लगा। बाह्य ऋण एवं घरेलू आय की सीमित तुरंत-सुलभता ने अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में गंभीर समस्या पैदा कर दी। इस स्थिति से निकलने के लिए और खर्च घटाने के लिए विभिन्न आर्थिक सहायताओं को समाप्त करने का सुझाव रखा गया जिसमें निर्यात परिदान शामिल था। एक अन्य सुझाव था उर्वरकों के मूल्य बढ़ाना, ग़ैर-योजना व्ययों (रक्षा व्यय समेत) पर नियंत्राण रखना। सरकार ने इन उपायों को लागू किया और वृहद्-आर्थिक स्थिति को नियंत्राण में ले आयी।

ii) व्यापार-नीति सुधार (Trade Policy Reforms)

निर्यातों को कार्य-प्रेरणा प्रदान करना व्यापार-नीति सुधारों का भारी प्रयास था । स्वतंत्राता प्राप्ति के समय से ही 'आयात-प्रतिस्थापन नीति' के पीछे भागने का निर्यातों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। नई व्यापार-नीति के अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि नियमन एवं अनुज्ञा-प्रदान(licensing) नियंत्राण की मात्राा कम करके 'प्रति-क्रियाशील निर्यात नीति' के पीछे तत्परता से लगा जाये। सबसे पहला काम था मुद्रा (रुपया) का अवमूल्यन कर निर्यातों की मूल्य-स्पर्धेयता को सुधारना। घरेलू बाज़ार में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए आयात हेतु सीमाशुल्क अवरोध कम किए गए। वर्ष १९९१ में १५० प्रतिशत का उच्च सीमाशुल्क स्तर घटाकर वर्ष २००१ में ३५ प्रतिशत और २००३-०४ के बजट में २० प्रतिशत तक लाया गया। आयात पर मात्राात्मक प्रतिबंध भी धीरे-धीरे समाप्त कर दिए गए। व्यापार-उदारीकरण ने स्वदेशी बाज़ार में व्यापक विदेशी उत्पादों के लिए दरवाज़े खोल दिए।

iii) उद्योग नीति सुधार (Industrial Policy Reforms)

औद्योगिक क्षेत्रा का नवीकरण करना सुधार-कार्यसूची में एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकरण था। औद्योगिक एवं निर्माण क्षेत्रा (निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्राों) में निराशाजनक प्रदर्शन गंभीर

चिंता का विषय था। सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की घटी क्रियाशीलता ने रोज़गार अवसरों को बुरी तरह प्रभावित किया। निजी एवं विदेशी भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने उद्योग को विनियमित करने का निश्चय किया। ऐसा करने के लिए उन उद्योगों को छोड़कर सभी परियोजनाओं के लिए अनुज्ञा-प्रदान समाप्त कर दिया गया जहाँ रणनीतिक एवं पर्यावरणीय विषय सर्वोपरि हैं। अब लगभग ८० प्रतिशत उद्योग अनुज्ञा-प्रदान व्यवस्था से निकाल दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक क्षेत्रा हेतु आरक्षित क्षेत्रा सीमित कर दिए गए हैं, और केन्द्रीय एवं बुनियादी उद्योगों में निजी क्षेत्रा द्वारा अपेक्षाकृत अधिक भागीदारी की अनुमति दी जाती है।

औद्योगिक क्षेत्रा को खोलने से विदेशी निवेश अर्थव्यवस्था में प्रवाहित हो रहा है। भारतीय व विदेशी उद्योग के बीच संयुक्त व्यवसाय एवं सहयोग (Joint Ventures and Collaborations) बढ़ रहे हैं। यहाँ तक कि रक्षा उत्पादन उद्योग भी घरेलू एवं विदेशी निवेशकों हेतु खोला गया है और अनुज्ञा-प्राप्ति के अधीन २६ प्रतिशत तक विदेशी निवेश की अनुमति है। साथ ही, अनुज्ञा-प्राप्ति के अधीन, भारतीय निजी भागीदारी उद्योग के लिए रक्षा उद्योग, १०० प्रतिशत तक खुला है।

iv) सार्वजनिक क्षेत्र सुधार (Public Sector Reforms)

सुधार-प्रक्रिया के मुख्य प्रयासों में एक है सार्वजनिक क्षेत्रा के उद्यमों का पुनर्गठन। वर्षों सार्वजनिक क्षेत्रा की इकाइयों ने भारी नुकसान झेले हैं। उन्हें चलाने के लिए बड़ा निवेश होता था, परन्तु पर्याप्त लाभ की उम्मीद नहीं होती थी। सुधार-प्रक्रिया के तहत काफ़ी बड़ी संख्या में सार्वजनिक इकाइयाँ या तो अंशत: निजीकृत कर दी गई हैं या फिर पूरी तरह बेच दी गई हैं। विनिवेश (disinvestment) की प्रक्रिया को ज़ारी रखा गया है और सरकार निजी व विदेशी निवेशकों हेतु शेयर-मूल्यों का प्रस्ताव कर रही है। सार्वजनिक क्षेत्रा का विनिवेश वर्ष २००१ में शुरू किए गए 'दूसरी-पीढ़ी सुधारों' की कार्यसूची के अन्तर्गत शीर्ष प्राथमिकता है।

वर्तमान में सरकार निजी घरेलू एवं विदेशी निवेशकों के लिए शेयर-मूल्य सीमाओं के उदारीकरण द्वारा अर्थव्यवस्था को और अधिक खोलने में गहरी रुचि दिखा रही है; उदाहरण के लिए, पैट्रोलियम शोधन (सार्वजनिक क्षेत्रा के अंतर्गत) १०० प्रतिशत खोला जाए, नागर-विमानन ४९ प्रतिशत, पाइपलाइन (तेल एवं गैस) १०० प्रतिशत, स्थावर संपदा (भवन-समूह) १०० प्रतिशत, आदि।

अब तक अर्थव्यवस्था ने उदारीकरण और 'सैप' प्रक्रिया का मिलाजुला परिणाम दर्शाया है। शुरू-शुरू में, जुलाई १९९१ में यह प्रक्रिया आरम्भ करने के बाद निर्यात तेजी से बढ़े। यह उछाल खासकर मुद्रा-अवमूल्यन के कारण था। इसी प्रकार, १९९१ और १९९६ के बीच जी. डी.पी. विकास दर प्रभावशाली थी। एफ.डी.आई. अंतर्वाह व फॉरैक्स एक स्तर तक सुधरे। बहरहाल, इस प्रक्रिया की गति दो कारणों से मंद पड़ गयी: प्रथम, केन्द्रीय सरकार के स्तर पर १९९६-मध्य एवं अक्तूबर १९९९ के बीच राजनीतिक अस्थिरता ने इस प्रक्रिया की निरन्तरता के बारे में अनिश्चितता पैदा कर दी। दूसरे, जुलाई १९९७ के एशियाई वित्तीय संकट ने भारत के निर्यातों पर विपरीत प्रभाव डाला और रुपये की कीमत (अमेरिकी डॉलर की तुलना में) फिर से गिर गयी, जिसने विदेशी निवेशकों की भावनाओं को आहत किया। अक्तूबर १९९९ से राजनीतिक अस्थिरता के साथ-साथ एशियाई वित्तीय संकट भी समाप्त हो गया तत्पश्चात् कालावधि में सरकार सुधार-प्रक्रिया के कार्यक्षेत्रा को बढ़ाने में प्रतिबद्धता दिखाती रही है। इस निश्चय का परिणाम बिल्कुल प्रत्यक्ष है कि एफ.डी.आई. अंतर्वाह बढ़ा है। अब वार्षिक एफ. डी.आई. अन्तर्वाह लगभग तीन अरब अमेरिकी डॉलर है। निर्यात फिर से सुधरने शुरू हो गए हैं।

बोध प्रश्न २

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाएँ।

१) बांग्लादेशी अर्थव्यवस्था पर उदारीकरण व 'सैप' का क्या प्रभाव पड़ा है?

.....

.....

.....

.....

.....

२) वे कारक कौन से हैं जिन्होंने भारत को नब्बे के दशक में उदारीकरण करने और 'सैप' को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया?

.....

.....

.....

.....

.....

३) आप भारत में उदारीकरण व 'सैप' के कार्य-निष्पादन का किस प्रकार मूल्यांकन करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

२१.७ पाकिस्तान में उदारीकरण और 'सैप'

जैसा कि हमने खण्ड तीन में देखा, पाकिस्तानी सरकार की कार्यवाही में सेना प्रमुख भूमिका निभाती है, देश फ़ौजी हुकूमत के तहत न होने पर भी। पाकिस्तानी समाज का एक बड़ा हिस्सा यह मानता है कि सरकार की कार्यवाही में सेना अकेले ही अनुशासन ला सकती है और यह आर्थिक समृद्धि के लिए अनिवार्य शर्त है।

पाकिस्तान ने आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के दिशा निर्देशों के अन्तर्गत १९८८ में 'सैप' शुरू किए। 'सैप' शुरू करने से पहले पाकिस्तान लगभग १३ वर्षों (१९७५ से १९८८) तक सैनिक शासक के अधीन रहा। १९८८ में लोकतंत्रा की वापसी तो हुई लेकिन यह जी.डी.पी. विकास दर की गिरावट में फलित हुई। घटनाओं के इस मोड़ पर बाह्य ऋणों का अत्यधिक दबाव था, निर्यातों एवं औद्योगिक उत्पादन में गिरावट थी और फॉरैक्स भण्डार में बिगाड़ था। अर्थव्यवस्था की कुल मिलाकर स्थिति बहुत अधिक खराब थी और सरकार के पास वित्तीय मदद के लिए आई.एम.एफ. एवं विश्व बैंक के पास जाने के सिवा कोई चारा नहीं था। ऋण प्रदान करते समय आई.एम.एफ एवं विश्व बैंक ने सरकार को सलाह दी कि वह आर्थिक सुधार लागू करे।

इन सुधारों का खास ध्यान सरकारी वित्त-प्रबंध में राजकोषीय घाटे को कम करने पर था। आई.एम. एफ. ने सरकार को अपना राजकोषीय घाटा कम करके चार प्रतिशत तक लाने के लिए कहा, जो

दोहरे अंकों में था। इस लक्ष्य को पाने के लिए आई.एम.एफ. ने ऊँचे काराधान एवं सार्वजनिक व्यय में कमी का सुझाव दिया। सार्वजनिक व्यय में सबसे बड़ी कटौती विकास के क्षेत्रा में हुई: १९८१ में ९.३ प्रतिशत से १९९७ में ३.५ प्रतिशत (जी.डी.पी. के)। 'सैप' का एक अन्य मुख्य क्षेत्रा था सीमाशुल्क दरों में कमी करना, जो १९९९ में ४५ प्रतिशत से घटाकर १९९२ में १२.५ प्रतिशत कर दी गईं। निर्यात बढ़ाने के लिए पाकिस्तानी मुद्रा के अवमूल्यन की सिफ़ारिश की गई और १९८८ से ही नियमित अन्तरालों के साथ अवमूल्यन होता रहा है। इन उपायों के साथ-साथ राज्य के स्वामित्व वाले उद्यमों को भी औने-पौने बेच देने की सलाह दी गई।

आई.एम.एफ. ने पाकिस्तानी सरकार को शुरू में छह क्षेत्राों में 'सैप' लागू करने का सुझाव दिया। प्रथम, अपनी मुद्रा को अमेरिकी डॉलर की तुलना में समायोजित करके व्यापार-नीति में सुधार। यह काम सुसंगत रूप से मुद्रा का अवमूल्यन करके एवं विनिमेय दर के स्तर को स्पर्धेय रखकर किया जाना था। इसके अतिरिक्त निर्यातों पर प्रतिबंध हटाये जाने थे और आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबंध, यथा कोटा, तथा सीमाशुल्क को घटाया जाना था। व्यापार-नीति ने इस प्रकार बहिर्मुखी-निर्यातोन्मुखी मार्ग पर ध्यान केन्द्रित किया। दूसरे, वित्त-नीति में सुधार ताकि सार्वजनिक व्यय में कटौती करके राजकोषीय घाटों को कम और दूर किया जा सके। यह काम सार्वजनिक क्षेत्रा में मूल्यों को बढ़ाकर किया जाना था ताकि लागत चुका सकें और राजस्व बढ़ा सकें। कर-प्रणाली में सुधार, कृषि व ऊर्जा क्षेत्राों से परिदानों की भारी कटौती अथवा समाप्ति अन्य अवयव थे। तीसरे, लाभ न देने वाली सार्वजनिक इकाइयों का निजीकरण कर सार्वजनिक क्षेत्रा में सुधार। चौथे, उच्चतम ब्याज दरों में ढील देने के साथ-साथ सावधि जमा व ऋण दरों को उदार बनाकर वित्तीय क्षेत्रा में सुधार। पाँचवे, उद्योग-नीति में सुधारों में शामिल हैं औद्योगिक क्षेत्रा से संरक्षण समाप्ति और माल पर मूल्य नियंत्राण। अन्तत:, विनिमेय दर को समायोजित करके और उद्योग हेतु प्रस्तावित संरक्षण समाप्त करके खेती के विपरीत झुकाव को दूर करके कृषि क्षेत्रा में सुधार। इन सुधारों के साथ कृषि मूल्यों का उदारीकरण हो और परिदानों पर विराम लगे।

'सैप' का पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है? 'सैप' लागू होने के बाद जी.डी.पी. विकास दर गिरी है और निर्यातों में किंचित सुधार हुआ है। इसका श्रेय निर्यात-उत्पादों में गुणवत्ता मूल्यांकन की बजाय मुद्रा अवमूल्यन को जाता है। एफ.डी.आई. अन्तर्वाहों में वृद्धि भी बहुत थोड़ी हुई है जो इस बात का संकेत है कि विदेशी निवेशकों ने उदारीकरण कार्यक्रमों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था का खुलना मात्रा ही बड़ी मात्रा में विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए कोई यथेष्ट स्थिति नहीं है; एक कुशल आधारभूत ढाँचे के साथ-साथ सामाजिक व राजनीतिक स्थिरता भी महत्त्वपूर्ण हैं। वर्तमान में पाकिस्तान इस मोरचे पर विफल है।

'सैप' ने पाकिस्तान को अर्थव्यवस्था के तानेबाने में बुनियादी परिवर्तन लाने में मदद नहीं की है। राष्ट्रीय आय में विनिर्माण क्षेत्रा का अंशदान कम रहा है जबकि वक्त के साथ और नीचे चल गया है। जैसा कि हमने पहले देखा, विनिर्माण क्षेत्रा में गिरावट से रोज़गार पैदा करने में विपरीत प्रभाव पड़ता है। वर्धमान विनिर्माण क्षेत्रा वाली अर्थव्यवस्था वृहद-आर्थिक स्थिरता प्रदान करती है। सेवा-क्षेत्रा में वृद्धि ही रोज़गार की समस्या का अस्थायी निदान ही कर सकती है। इसी प्रकार, अच्छे प्रशासन का सवाल पाकिस्तान पर हमेशा बड़ा परन्तु अस्पष्ट रहा है। लगातार सेना द्वारा सरकार को अपने हाथ में लिया जाना निजी घरेलू व विदेशी निवेशकों को गलत सन्देश पहुँचाता है। सैन्य खर्च, जो राष्ट्रीय आय का पाँच प्रतिशत है, में वृद्धि बहुत अधिक है, खासकर पाकिस्तान जैसे एक विकासशील देश के लिए। शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे विकासात्मक विषयों पर सरकारी खर्च कम होता रहा है।

२१.८ श्रीलंका में उदारीकरण और 'सैप'

श्रीलंका ही सबसे पहला दक्षिण एशियाई देश है जिसने उदारवादी बहिर्मुखी नीतियों को निस्संदेह पूर्ण रूप से अपनाया। १९४८ में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से मुक्त होने के बाद से ही उसने

अपनी व्यापार-प्रणाली में परिवर्तनों की शृंखला शुरू की है। स्वतंत्राता पश्चात् पहले दशक भर उसने एक उदारवादी व्यापार-प्रणाली चालू रखी। तथापि, बढ़ते भुगतान-शेष और राजनीतिक नेतृत्व में परिवर्तन ने एक नीति-परिवर्तन की ओर प्रवृत्त किया – संरक्षणवादी आयात-प्रतिस्थापन नीतियों की ओर। १९७० के दशकमध्य तक श्रीलंकाई अर्थव्यवस्था सर्वाधिक अन्तर्मुखी-अनुकूल एवं नियमित अर्थव्यवस्थाओं में गिनी जाने लगी। इन नीतियों का प्रतिकूल पार्श्विक प्रभाव था – १९६० के पूर्वार्ध से ही आर्थिक विकास की गति का मंद होना। १९७० के दशक के उत्तरार्ध में सरकार ने इसी कारण व्यापक आर्थिक उदारीकरण के मार्ग पर चलने का निश्चय किया। उसने 'सैप' दो चरणों में शुरू किये – प्रथम १९७७-८९ में और दूसरा १९९० व उसके बाद।

सैप, प्रथम चरण (१९७७-८९)

आर्थिक सुधार प्रक्रिया १९७७ के उत्तरार्ध में शुरू हुई – पहले सीमाशुल्क व्यवस्था पर विचार कर बदलने के काम को शुरू करके, विदेशी निवेश पर प्रतिबंध घटाकर एक मुक्त व्यापार क्षेत्रा(Free Trade Zone) योजना के तहत निर्यातानुकूल विदेशी निवेश को नए प्रोत्साहनों की घोषणा करके। उसने वित्तीय सुधारों का काम भी हाथ में लिया जिसमें शामिल था – मुद्रास्फीति दर से ऊपर स्तर पर ब्याज दरों को समायोजित करना, बैंकिंग क्षेत्रा को विदेशी बैंकों के लिए खोलना व ऋण बाज़ारों को ब्याज दरें निर्धारित करने की अनुमति देना, विनिमेय दर का पुन: संरेखण एवं ग़ैर-पारंपरिक निर्यातों हेतु प्रोत्साहन। उसने अपनी घरेलू मुद्रा का अवमूल्यन १०० प्रतिशत से भी अधिक किया।

अर्थव्यवस्था पर सुधारों पर प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा चूँकि जी.डी.पी. विकास दर १९७० के पूर्वार्ध में २.९ प्रतिशत से बढ़कर १९७८-८३ के दौरान छह प्रतिशत तक पहुँच गयी। एफ.डी.आई. अन्तर्वाह जो १९७०-७७ में दो लाख अमेरिकी डॉलर (वार्षिक औसत) थे, १९७८-८७ में ४.१ करोड़ अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गए। निर्यात १९७७ में ८ खरब अमेरिकी डॉलर से बढ़कर १९८८ में १.५ अरब अमेरिकी डॉलर पहुँच गया। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप से, विदेशी निवेशकों का विश्वास बढ़ा और घरेलू व विदेशी निवेशकों के बीच संयुक्त-व्यवसायों की संख्या में इज़ाफा हुआ। बहरहाल, १९८० के दशक के आरम्भ में इन सुधारों की गति धीमी पड़ गयी, खासकर दो कारणों से: प्रथम, संरचनात्मक समायोजन से दूर राजनीतिक रूप से आकर्षित करने वाली मोहजनक निवेश परियोजनाओं की दिशा में नीति-प्राथमिकताओं का खिसकना और दूसरे, श्रीलंकाई तमिल व सरकारी बलों के बीच नृजातीय संघर्ष का तेज होना।

सैप, द्वितीय चरण (१९९० से आगे)

लिबरेशन टाइगर्स ऑफ़ तमिल ईलम (लिट्टे) के झण्डे तले श्रीलंकाई तमिलों के लिए अलग प्रदेश हेतु आंदोलन १९८० के दशक-मध्य के आसपास उठा जो अत्यधिक आर्थिक नुकसान और राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्राों में अस्थिरता का कारण बना। लिट्टे का राजद्रोह और खाड़कू गतिविधियाँ रक्षा-व्यय में तीव्र वृद्धि में परिणत हुईं, जिसने बदले में बढ़ते राजकोषीय घाटों, बढ़ती वृहद-आर्थिक समस्याओं, व अंतरराष्ट्रीय स्पर्धेयता के तीव्र ह्रास की ओर प्रवृत्त किया। वर्ष १९८८ के अंत तक फॉरैक्स भण्डार तेजी से घट चुके थे। एफ.डी.आई. में गिरावट आई और भुगतान-शेष संकट पैदा हो गया जिसने सरकार को वित्तीय मदद के लिए जून १९८७ में आई.एम.एफ. के पास जाने को मज़बूर कर दिया। ऋण आर्थिक सुधारों को शुरू किए जाने की शर्त के साथ ही प्रदान किया गया।

सुधार पैकेज में शामिल थे – निजीकरण योजनाएँ, अतिरिक्त सीमाशुल्क कटौतियाँ व सरलीकरण, चालू-खाता लेन-देनों (जी.पी.ओ. संबंधी) पर विनिमय नियंत्राणों की समाप्ति, सुनम्य विनिमय दर के प्रति वचनबद्धता, और राजकोषीय घाटे को कम करने हेतु पहल। सुधार पैकेज के लागू होने से अर्थव्यवस्था को विकास दर के कायाकल्प में मदद मिली, जो १९८० के दशकोत्तर में ३.५ प्रतिशत से बढ़कर १९९० के दशक-पूर्व में ५.०३ पर पहुँच गयी। १९९०-९६ के दौरान (कुछ समय के लिए) लिट्टे के विद्रोह में रुकावट से भी सरकार को विकासात्मक गतिविधियों पर फिर से ध्यान केन्द्रित करके हेतु ठोस प्रयास करने में मदद मिली। सामाजिक स्थिरता व शांति लौट आने के साथ

ही विदेशी निवेश का प्रवाह देश की दिशा में हो गया। १९९७ में एफ.डी.आई. अन्तर्वाह ४३.३ करोड़ अमेरिकी डॉलर तक बढ़ गये। निर्यातों में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ। सैन्य खर्च घटाने का सवाल फिर भी हल नहीं हुआ। देश सेना पर राष्ट्रीय आय का चार प्रतिशत खर्च करता है जो कि श्रीलंका जैसी अल्य अर्थव्यवस्था के लिए बहुत अधिक है।

बोध प्रश्न ३

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर इकाई-अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाएँ।

१) पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था के प्रसंग में आप उदारीकरण व 'सैप' को किस प्रकार देखते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

२) सत्तर के दशकोत्तर से श्रीलंका द्वारा प्रारंभ आर्थिक सुधारों के मुख्य अभिलक्षणों की पहचान करें।

.....

.....

.....

.....

.....

२१.९ सारांश

वर्ष १९७३ में प्रथम 'तेल आघात' के उपरांत विश्व अर्थव्यवस्था में गंभीर रूप से मंदी छा गई। अनेक विकासशील व अल्पतम विकसित देश बुरी तरह से हिल गये और अपनी अर्थव्यवस्थाओं को फिर से खड़ा करने हेतु मदद के लिए आई.एम.एफ. व विश्व बैंक के पास पहुँचे। सहायता उदारीकरण व 'सैप' के रूप में नीति-विधान के साथ मिली। ऋणी अर्थव्यवस्थाओं को अपनी अर्थव्यवस्थाएँ/बाज़ार विदेशी उत्पादों हेतु खोलने की प्रक्रिया शुरू करनी थी। साथ ही उन्हें अपनी अर्थव्यवस्थाएँ पुनर्गठित करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्रा उद्यम, आदि जैसे अकुशल तत्त्वों को भी दूर करना था। इस सोच के पीछे छुपा सिद्धांत यह था कि बाज़ार को राज्य अथवा सरकार की अपेक्षा अधिक बड़ी भूमिका निभानी चाहिए।

दक्षिण एशिया पर 'सैप' और उदारीकरण का असर मिला-जुला रहा : कुछ देशों ने लाभ उठाया जबकि कुछ ने संकोच किया। श्रीलंका व भारत ने लाभ इस अर्थ में प्राप्त किया कि उनकी विकास दरें सुधरीं। निर्यात बढ़ा और विदेशी निवेश अन्तर्वाहों में बढ़ोत्तरी हुई। पाकिस्तान ने फ़ायदा नहीं उठाया, खासकर इसलिए कि वहाँ राजनीतिक अस्थिरता असुरक्षित सामाजिक परिवेश से जुड़ी रही।

उदारीकरण व आर्थिक कायांतरण से लाभ उठाने के लिए कुशल आधारभूत ढाँचे का होना अनिवार्य है। इस आधारभूत ढाँचे की या तो पूर्णत: या फिर अंशत:, दक्षिण एशिया में कमी है। इसके

अतिरिक्त, विदेशी उद्योग के प्रवेश हेतु निजी घरेलू उद्योग का विरोध रहता है; खासकर इस आधार पर कि स्वदेशी खिलाड़ियों हेतु 'समतल क्रीड़ा-स्थल' उपलब्ध नहीं है। इस विरोध के बावजूद, उक्त नीति लागू की जा रही है और इसका पूरी तरह मूल्यांकन तभी देखा जा सकता है जब यह कुछ और समय के लिए व्यवहार में रहे।

२१.१० कुछ उपयोगी पुस्तकें

एशियन डवलपमेंट बैंक, *एशियन डवलपमेंट आउटलुक,* मनीला, फिलीपीन्स, (अनेक वर्ष)

दासगुप्त, बी., (१९९८) *स्ट्रक्चरल अॅड्जस्टमेंट, ग्लॉबल ट्रेड एण्ड द न्यू पॉलिटिकॅल इकॉनॅमि ऑफ डवलपमेंट*, नई दिल्ली

वर्ल्ड बैंक, *वर्ल्ड डवलपमेंट रिपोर्ट्स,* वाशिंगटन, डी.सी., *यू.एस.ए.,* (अनेक वर्ष)

शैनरी, एच. (सं.), (१९७९) *स्ट्रक्चरल चेन्ज एण्ड डवलपमेंट पॉलिसि,*न्यूयार्क

शोभन, आर. (सं.) (२०००) *स्ट्रक्चरल अॅड्जस्टमेंट पॉलिसीज़ इन द थर्ड वर्ल्ड : डिज़ायन एण्ड इक्सपीरिअन्स,* ढाका

२१.११ बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न १

१) विश्वयुद्ध की समाप्ति पर विकसित, विकासशील एवं अल्पतम विकसित देशों (एल.डी.सी.) की व्यापार नीतियों में बहुत प्रभावशील परिवर्तन देखा गया। जबकि औद्योगिक (विकसित) अर्थव्यवस्थाओं ने निर्यातोन्मुखी विकास रणनीति को मौका देने के लिए अपनी व्यापार-व्यवस्था को उदारीकृत कर दिया, विकासशील व एल.डी.सी. ने अपने स्वदेशी बाज़ार को बचाने के लिए आयात-प्रतिस्थापन रणनीति अपनायी। बहुर्मुखी निर्यात रणनीति ने विकसित देशों को लाभ पहुँचाया ताकि वे अपनी-अपनी विकास दर बढ़ायें जबकि अन्तर्मुखी रणनीति विकासशील व एल.डी.सी. अर्थव्यवस्थाओं के लिए मंदी लायी। इसके अतिरिक्त, विकासशील व एल.डी.सी. ने व्यापक उत्पादन के लिए सार्वजनिक क्षेत्रा के उद्यमों पर बहुत अधिक भरोसा किया जिसने निजी क्षेत्रा के विकास को रोक दिया। इसने इन अर्थव्यवस्थाओं के आधार में असंतुलन पैदा कर दिया और उत्पादन-साधनों के अपर्याप्त आबंटन की ओर प्रवृत्त किया। १९७३ के 'तेल आघात' ने विकासशील व एल.डी.सी. की कमज़ोरियों को उजागर कर दिया और आवश्यकता महसूस की गई कि उदारीकरण व 'सैप' लागू किए जाएँ।

२) उदारीकरण का अर्थ है मुक्त व्यापार, निवेश व देशों के बीच पूँजी-प्रवाह। यह माल-व्यापार, विदेशी निवेश, सेवाकार्यों में व्यापार आदि में शामिल व्यापार-प्रक्रियाओं के सरलीकरण पर ज़ोर देता है। यह अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में कम अहस्तक्षेपवाद व सरकार की अधिक सहकारी भूमिका पर भी ज़ोर देता है। आयात-शुल्कों (यथा, सीमाशुल्क) में कमी ही व्यापार उदारीकरण की जान है।

३) 'सैप' में आते हैं – राज्य के स्वामित्व वाले उद्यमों का निजीकरण, व्यापार-नीति में संशोधन यथा आयात-प्रतिस्थापन रणनीति को हटाना और निर्यातोन्मुखी रणनीति को अपनाना। इसमें राजकोषीय घाटे में कमी लाना, औद्योगिक क्षेत्रा से संरक्षण हटाने के लिए औद्योगिक नीति में परिवर्तन लाना, और कृषि मूल्यों का उदारीकरण व परिदानों पर विराम लगाना भी शामिल है।

बोध प्रश्न २

१) बांग्लादेश ने उदारीकरण व 'सैप' का श्रीगणेश १९९० में किया और अपनी विकास दर को १९९० में ३.३ प्रतिशत से बढ़ाकर वर्ष २००० में ५.५ प्रतिशत कर दिया। यह परिवर्तन निर्यात

में वृद्धि की से आया। विदेशी निवेश भी बढ़ा, हालाँकि थोड़ा ही। अर्थव्यवस्था के खुलने से बड़ी संख्या में विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने में मदद मिली, खासकर तेल, पैट्रोलियम व गैस अनुसंधान कार्यों में। तथापि, प्रमुख चुनौती है 'निर्यात-टोकरी की विविधता' जिसमें खासकर सूती बने-बनाये वस्त्रा शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, भौतिक बुनियादी ढाँचा अभी तक अक्षम है और बड़े विदेशी निवेशों को आकर्षित करने में असमर्थ है।

२) विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी से भारतीय अर्थव्यवस्था में गंभीर आर्थिक संकट आया था, जो कि बढ़ते आयात बिल, निर्यात में गिरावट और अपर्याप्त एफ.डी.आई. अन्तर्वाहों से पैदा हुआ था। १९९०-९१ में अमेरिका-इराक खाड़ी युद्ध और इराक पर पोताधिरोध के परिणामस्वरूप भारत के तेल-संबंधी खर्चे आसमान को छूने लगे, पश्चिम एशियाई देशों को निर्यात क्रमश: घटता गया और इसने पश्चिम एशिया में कार्यरत भारतीयों के धन-प्रेषण प्रवाह को रोक दिया। इसने औद्योगिक उत्पादन को भी अवरुद्ध कर दिया, मुद्रास्फीति को शिखर तक पहुँचा दिया और जी. डी.पी. विकास दर को घटा दिया। इस आर्थिक संकट के बीच राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक अस्थिरता रही। इन परिस्थितियों में भारत ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन कर दिया और आई.एम. एफ. से बड़ी मात्रा में ऋण लेकर बी.ओ.पी. में असंतुलन को ठीक किया। उसने आई.एम.एफ. के दिशानिर्देशों के अनुसार जुलाई १९९१ में संरचनात्मक सुधार लागू किये। ये क्षमता और उत्पादकता सुधारने पर अभिलक्षित थे। इन सुधारों की प्रक्रिया अब भी चल रही है।

३) भारत अनिवार्यत: एक लोकतांत्रिाक देश है जहाँ सरकार की हर नीति बहस का मुद्रा बन जाती है, न सिर्फ़ विपक्षी दलों में बल्कि शासक दल के भीतर भी। आर्थिक मसले पर कोई सर्वसम्मति बनाने में लम्बा समय व कड़ी मशक्कत शामिल होती है और इस प्रक्रिया में विदेशी निवेशक कभी-कभी निराश हो जाते हैं और अपने वायदे से मुकर जाते हैं। सरकार में परिवर्तन के साथ हरी झण्डी मिलने के बाद भी नीति को जारी रखने का कोई आश्वासन नहीं होता। वर्तमान में, सार्वजनिक क्षेत्रा की इकाइयों का विनिवेश बहस में पड़ा है और सरकार मुद्दे के पीछे पड़े रहने में कठिनाई का अनुभव कर रही है क्योंकि सरकार के भीतर कोई मतैक्य नहीं है।

बोध प्रश्न ३

१) पाकिस्तान १९८८ में उदारीकरण व 'सैप' लागू किये और लगभग एक दशक के बाद उसकी विकास दर गिर गई। व्यापार-व्यवस्था के खुलने से निर्यातों में किंचित् ही सुधार आया, खासकर निर्यात-टोकरी कुछ ही पारम्परिक मदों तक सीमित है। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक क्षेत्रा का आधुनिकीकरण भी नहीं हो सका। दूसरे, राजनीतिक अस्थिरता व सामाजिक असुरक्षा के कारण एफ.डी.आई. अन्तर्वाहों की मात्रा नहीं बढ़ सकी। वर्तमान में, धार्मिक रूढ़िवाद एफ.डी.आई. के प्रवाह को रोक रहा है। अन्तत: कुशल बुनियादी ढाँचे की अनुपलब्धता उदारवाद व 'सैप्स' के सफलतापूर्वक लागू होने में सबसे बड़ी बाधा है।

२) श्रीलंका ने आर्थिक सुधार दो चरणों में लागू किए – प्रथम १९७७-८९ में और दूसरे, १९९० व उससे आगे। श्रीलंका १९७० के दशक-मध्य में ही आयात-प्रतिस्थापन रणनीति की बुराइयाँ महसूस कर लीं और आयातों पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाकर अर्थव्यवस्था को विदेशी उत्पादों के लिए खोल दिया। निर्यातोन्मुखी रणनीति को व्यवहार में लाया गया जिससे निर्यात बढ़ाने में मदद मिली और जी.डी.पी. विकास दर बढ़ी। सुधारों के दूसरे दौर में विदेशी निवेश को आकर्षित करने पर ध्यान दिया गया। एफ.डी.आई. अन्तर्वाह बढ़े और निजी घरेलू व विदेशी उद्योग के बीच संयुक्त-व्यवसायों को बढ़ावा मिला। बहरहाल, तमिल अलगाववादी आन्दोलन के कारण सुधारों को करारा झटका लगा।